International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(2): 266-268

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(2): 266-268
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-01-2022
Accepted: 15-02-2022

डॉ. हेमन्त शर्मा
सहायक प्राध्यापक संस्कृत साहित्य
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर,
छत्तीसगढ़, भारत

Corresponding Author:
डॉ. हेमन्त शर्मा
सहायक प्राध्यापक संस्कृत साहित्य
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर,
छत्तीसगढ़, भारत

संस्कृतवाङ्मय में धर्मानुचिन्तन

डॉ. हेमन्त शर्मा

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति और दर्शन की सर्वप्रमुख विशेषता धर्म ही है। धर्म ही मानव को मानव से जोड़े रखा है, धर्म ही मानव को महामानव बनाता है। भारत में धर्म शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के रिलीजन (Religion) और उर्दू के मज़हब के समान संकुचित अर्थ में नहीं हुआ है अपितु व्यापक अर्थ में हुआ है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ धारणपोषणयोः' से होती है जिसका अर्थ है जो धारण किया जा सके या जो धारण करता है, जो पोषण करता है अर्थात् 'धारयति इति धर्मः'। भारत की वसुधा सृष्टि के आरम्भ से ही धर्म की धुरी रही है। वस्तुतः किसी भी संस्कृति के सम्यक् संचालन के लिये, सामाजिक समरसता व सौहार्द के लिये धर्म ही मूल में होता है। महाभारत में कहा गया है, कि जो धारण करने योग्य है वह धर्म है-

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्यात्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥ [1]

भारतीय संस्कृति में धर्म के व्यापक अर्थ को लिया गया है यहाँ धर्म से तात्पर्य सृष्टि सहित मानव के समस्त विधान से है। जप-तप-पूजा-पाठादि की संकुचित विचारधारा के रूप में धर्म को परिभाषित न करते हुये उसके व्यष्टि व समष्टि उभयविध व्यापक रूप को स्वीकार किया गया है। यहाँ धर्म को परमात्मा का ही विग्रहवान स्वरूप माना गया है। ''रामो विग्रहवान् धर्मः'' [2] की उक्ति इस संबन्ध में अवश्य ही चरितार्थ होती है। महाभारतीय विष्णु सहस्रनामस्तोत्र में कहा गया है कि आचार ही परम धर्म है और उसके स्वामी स्वयं नारायण हैं- आचारप्रभवो धर्मः धर्मस्य प्रभुरच्युतः।[3] यही कारण है कि धर्मधुरी वसुन्धरा पर जब-जब अनाचार, अत्याचार बढ़ता चला जाता है तब-तब स्वयं अज अजन्मा निर्गुण निराकार परमात्मा भी धर्म की रक्षा के लिये धर्म को अनुप्राणित करने के लिये सगुण साकार रूप में अवतरित होते हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण शंखनाद करते हुये कहते हैं –

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ [4]

भारतीय मनीषियों ने जिस धर्म के कारण सृष्टि का संचालन हो रहा है जो सबका नियामक है उस धर्म के स्वरूप को परिभाषित करने का महनीय प्रयास किया। महाभारत में अहिंसा को परम धर्म माना गया – "अहिंसा परमो धर्मः" [5] व "आनृशंस्यं परमो धर्मः" [6] मनुस्मृतिकार मनु आचार को परम धर्म मानते हैं और धर्म के दश लक्षण बताते हैं-
"आचार परमो धर्मः" [7]

धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ [8]

मनु के अनुसार इन लक्षणों से धर्म को जाना जा सकता है। एक अन्यपरिभाषा के अनुसार वेद कहता है, कि अपने-अपने स्वभावगत गुण धर्मों का अतिक्रमण न करते हुये तदनुसार कार्य संपादित करना ही धर्म है – "समिध्यमानाः प्रथमानुधर्माः" [9] बृहदारण्यकोपनिषद् में धर्म के विषय में विलक्षण वर्णन करते हुये कहा गया है कि सत्य ही धर्म है-धर्म ही सत्य है -

धर्मात् सत्यं परं नास्ति .... एवं यो वै स धर्मः। सत्यं वैतत्। तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति। धर्मं वदन्त सत्यं वदतीत्येतद् ध्यैवैतदुभयं भवति। [1]

वामन पुराण में सदाचार का मूल धर्म को माना गया है, धन को शाखा, विषयों को पुष्प व फल को मोक्ष माना गया –

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा।
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः ॥ [11]

महाभारत में धर्म को और अधिक परिमार्जित करते हुये कहा गया है, कि धर्म वह है जो किसी धर्म को बाधित न करता हो। जो किसी धर्म को बाधित करे वह धर्म नहीं कुधर्म होता है-

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः ॥ [12]

महाभारत में धर्म की विभिन्न परिभाषाओं के साथ सदाचार को भी परम धर्म माना है-

वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।
शिष्टाचीर्णोऽपरः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः ॥ [13]

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार धर्म का अर्थ है समस्त धार्मिक कर्त्तव्य –

धर्मस्य गोप्ताजनीति तमभ्युत्कृष्टमेवं विदभिषेक्ष्यन्नेतयार्चाभिमन्त्रयेता। [14]

मनुस्मृतिकार वेदों को ही अखिल धर्म का मूल स्वीकारते हैं-

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। [15]

मीमांसा दर्शन धर्म को परिभाषित करते हुये कहता है-

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। [16]

गौतमानुसार जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है-

यतोऽभ्युदय निःश्रेयसिद्धिः स धर्मः। [17]

इससे स्पष्ट होता है, कि जो धारण करता है, जो अभ्युदय का हेतु है, जो धृति-क्षमा-दमादि लक्षणों से युक्त है, जो राष्ट्रमंगल का कारक है, जो सृष्टि का नियामक है इत्यादि लक्षणों से युत धर्म है। इन्हीं सभी का समाहार करते हुये मनु ने धर्म के अन्य चार प्रमुख विलक्षण लक्षणों का प्रतिपादन किया-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहु साक्षात् धर्मस्य लक्षणम् ॥ [18]

मनुस्मृति में धर्म को रक्षक भी मना गया है वहाँ कहा गया है जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षतः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ [19]

वस्तुतः समष्ट्यात्मक इस धर्म के विभिन्न स्वरूपों का व्यष्ट्यात्मक वर्णन सामाजिक व्यवस्थानुसार लोकव्यवहार में देखने को मिलता है। महाराज मनु ने देश काल परिस्थिति के अनुसार धर्म के कई प्रकारों का वर्णन मनुस्मृति में किया है। मनु ने वर्णाश्रम धर्म के अलावा स्त्रीधर्म-राजधर्म-आपद्धर्म आदि धर्म के विभिन्न उपागमों का विवेचन विस्तार से मनुस्मृति में किया है-

स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च।
राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥
देशधर्मान् जातिधर्मान् कुलधर्माँश्च शाश्वतान्।
पाषण्डगणधर्माँश्च शास्त्रेऽस्मिनुक्तवान्मनुः ॥ [20]

लौकिक अथवा पारलौकिक जगत् दोनों जगह मंगल करने वाला धर्म ही होता है। निम्न वैदिक मन्त्र में लौकिक जगत में सभी वर्णों के साथ राष्ट्र के मंगल की कामना ऋषि कर रहा है-

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधि महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्जोषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो जुवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्। [21]

इसी प्रकार पारलौकिक जगत में भी धर्म ही जीव का अनुगमन करता है-

धनानि भूमौ पशवः हि गोष्ठे नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥ [22]

नीतिग्रन्थों में कहा गया है, कि धर्म ही मनुष्य को मानवेतर प्राणियों से भिन्न करता है। धर्म ही मानव को मानव बनाता है-

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥ [23]

आहार करना, सोना, जागना व प्रजनन करना यह सभी कार्य तो पशु भी करते हैं किन्तु धर्म एक मात्र ऐसा कारक है जो मानव को मानवेतर प्राणियों से न केवल अलग करता है अपितु उसे श्रेष्ठ भी बनाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् भी धर्माचरण की शिक्षा देते हुये कह रहा है-

सत्यं वद धर्मं चर [24]

वैदिक संस्कृति में भी वैदिक देवता वरुण और मित्र धर्मपूर्वक देव के विधानानुसार स्व-स्व नियमों का पालन करते दिखते हैं-

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया [25]

वैदिक संस्कृति में धर्म को दण्ड विधान का नियमनकर्त्ता भी माना गया है। वरुण का धर्म इतना कठोर है कि उससे आकाश और पृथ्वी दोनों काँपते हैं-

द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणां विष्कम्भिते अजिरे भूरिरेतसा [26]

भारतीय संस्कृति में पत्नी को धर्मसंग्रह में प्रमुख सहायक के रूप में स्वीकार किया गया है। इसीलिये शायद पत्नी को धर्म-पत्नी कहा गया। महाभारत में कहा गया है धर्मसंग्रह में पत्नी के समान कोई दूसरा सहायक नहीं-

नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे [27]

भारतीय संस्कृति में धर्म के व्यापक स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ मानव की प्रत्येक क्रिया के साथ धर्म जुड़ा हुआ है। मोक्ष के साथ-साथ अर्थ और काम की प्राप्ति भी धर्म के द्वारा मानी गयी है। महाभारत में कहा गया है कि धर्म से ही अर्थ और काम की प्राप्ति होती है-

ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे। धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥ [28]

मनु ने चतुर्युगानुरूप धर्म का प्रतिपादन करते हुये कहा है कि सतयुग में धर्म सत्य-दया-शौच-दान चतुष्पाद युक्त था और युगानुसार घटते-घटते क्रमशः त्रेता में उससे कम द्वापर में उससे कम और कलियुग में तो केवल एक चरण ही शेष रहा-

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः॥ [29]

इस प्रकार धर्म के सम्बन्ध में विविध व्याख्यायें भारतीय ग्रन्थों में व विश्व के अन्यान्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होती हैं। चाहे किसी भी देश की संस्कृति हो, समाज हो, जगत का कोई भी प्राणी क्यों न हो धर्म प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से न्यूनाधिक रूप में सभी को अवश्य प्रभावित करता है। जीव-जगत का धारक, कर्म-क्रिया का कारक, पाप-पुण्य का निर्धारक, सदासद विचारक, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णायक धर्म ही है। वस्तुतः शाश्वत सनातन नित्य विद्यमान धर्म के द्वारा ही लोकमंगल व राष्ट्रोत्थान संभव है।

संदर्भ

1. महाभारत शान्तिपर्व 109.1
2. रामायणम्- अरण्यकाण्ड 37.13
3. विष्णुसहस्रनाम- श्लोक 137
4. श्रीमद्भगवतगीता- 4.7
5. महाभारत अनुशासन पर्व- 115.1
6. महाभारत वनपर्व 373.76
7. मनुस्मृति 1.108
8. मनुस्मृति- 6.92
9. ऋग्वेद 3.17.1
10. बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.11-14
11. वामनपुराण14.19
12. महाभारत वनपर्व 131.11
13. महाभारत अनुशासन पर्व 141.65
14. ऐतरेय ब्राह्मण-7.17
15. मनुस्मृति- 2.6
16. शबरभाष्यम्- 1.1.2
17. कणादसूत्रम्- 1.1.2
18. मनुस्मृति- 2.12
19. मनुस्मृति- 8.15
20. मनुस्मृति- 1.114,118
21. यजुर्वेदसंहिता- 22.22
22. वैराग्यशतक(भर्तृहरि)
23. हितोपदेश(मित्रलाभ)- प्रस्ताविका 25
24. तैत्तिरीयोपनिषद्- 1.11
25. ऋग्वेद- 5.63.7
26. ऋग्वेद-6.70.1
27. महाभारत- शान्तिपर्व 145.16
28. महाभारत- स्वर्गारोहण पर्व 5.62
29. मनुस्मृति- 1.86